राजस्थान उच्च न्यायालय, जयपुर पीठ

एकलपीठ सिविल द्वितीय अपील संख्या 448/1996

1. श्रीमती मोहिनी पत्नी स्वर्गीय चोथमल।

2. रामबाबू पुत्र स्वर्गीय चोथमल निवासी गली गुलजी धाभाई, गंगोरी बाजार, जयपुर।

---- अपीलार्थीगण-प्रत्यर्थीगण

बनाम

1. श्रीमती गोपाली @ श्यांती देवी पत्नी प्रभु नारायण पत्नी तुलसी राम ब्राह्मण, निवासी गली गुलजी धाबाई, गंगोरी बाजार, जयपुर।

----वादी-प्रत्यर्थी

2. संतोष पुत्री स्वर्गीय चोथमल।

3. बिल्लो @ रेखा पुत्री स्वर्गीय चोथमल।

4. श्रीमती मधु पुत्री स्वर्गीय चोथमल।

निवासी गुलजी धाबाई की गली, गंगोरी बाजार, जयपुर।

------प्रत्यर्थी-प्रोफ़ार्मा प्रत्यर्थीगण

अपीलार्थी (गण) की ओर से	:	श्री आर.के डागा जी के साथ
		श्री प्रशांत डागा एवं श्री राहुल सिंह
प्रत्यर्थी (गण) की ओर से	:	श्री एम.एम. रंजन, वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अमन पारीक
		और के साथ
		श्री दौलत शर्मा

माननीय न्यायमूर्ति सुदेश बंसल

निर्णय

निर्णय सुरक्षित करने की तारीख : **04/07/2022**

निर्णय उच्चारित करने की तारीख : **29/07/2022**

न्यायालय द्वारा

रिपोर्टेबल

1. यह सिविल दूसरी अपील बेदखली और कब्ज़ा के लिए एक सिविल वाद से उत्पन्न होती है जिसका शीर्षक सिविल वाद संख्या 513/64 है जिसका शीर्षक श्रीमती है गोपाली @ शांति देवी बनाम श्री चोथमल एवं अन्य जो 09-12-1964 को आरंभ किया गया था। दिनांक 30.07.1994 को वादी-प्रत्यर्थी संख्या 1 के पक्ष में और मृत प्रत्यर्थी संख्या 1 के विधिक प्रतिनिधियों के विरुद्ध निर्णय सुनाया गया। प्रत्यर्थी के विधिक प्रतिनिधि संख्या 1 ने प्रथम अपील संख्या 14/1994 को वरीयता दी, जिसमें अतिरिक्त जिला न्यायाधीश संख्या 7, जयपुर शहर, जयपुर के न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री दिनांक 30.07.1994 की दिनांक 03-10-1996 द्वारा पुष्टि की गई है। यह दूसरी अपील मृत प्रत्यर्थी संख्या 1 के दो विधिक प्रतिनिधियों द्वारा दायर की गई है, चोथमल और उनके अन्य विधिक प्रतिनिधियों को प्रोफार्मा प्रत्यर्थीगण के रूप में प्रत्यर्थी संख्या 2, 3 और 4 के रूप में शामिल किया गया है। सिविल मुकदमे का निर्णय प्रत्यर्थी संख्या 1-वादी के पक्ष में और मृत प्रत्यर्थी संख्या 1 (अपीलार्थी और प्रत्यर्थी संख्या 2, 3 और 4) के विधिक प्रतिनिधियों के विरुद्ध निम्नलिखित तरीके से सुनाया गया है:-

> "दावा वादिनी विरुद्ध प्रतिवादी गण 1/1 लगायत 1/5 से वादग्रस्त सम्पति एफज़ीएच से कब्ज़ा प्राप्ति करने बाबत 50.20 रु वसूल करने सहित मय खर्चा डिक्री किया जाता है। दायरी दावा दिनांक 09.12.1964 से ता प्राप्ति कब्ज़ा वादग्रस्त मकान वादनी को उपरोक्त प्रति वादीगण से 5 /- रु मासिक की दर से हर्जा इस्तेमालि दिलाया जाता है। वाकई कब्ज़ा संभलाने हेतु प्रतिवादीगण को दो माह का समय दिया जाता है। खर्चा डिक्री नियमानुसार बनाया जावे।"

2. दोनों पक्षों की दलीलें सुनीं और पूरे रिकॉर्ड का अवलोकन किया।

3. इस न्यायालय की समन्वय पीठ ने दिनांक 14.05.1997 के आदेश के तहत तत्काल दूसरी अपील में विचार के लिए कानून के महत्वपूर्ण प्रश्न तैयार किए।

कानून के महत्वपूर्ण प्रश्नों को तैयार करते समय, ऐसा प्रतीत होता है कि ट्रायल कोर्ट के समक्ष उनकी स्थिति के संदर्भ में वर्तमान अपील में पक्षकारों की स्थिति के संदर्भ का उल्लेख करने में कुछ अनजाने में त्रुटि हुई है, इसलिए, कानून के महत्वपूर्ण प्रश्नों को आवश्यकता अनुसार सुधार के साथ सुनाया जा रहा है:-

> "(I) क्या ट्रायल कोर्ट द्वारा 30 जुलाई, 1994 के निर्णय और डिक्री में संपत्ति के स्वामित्व के प्रश्न पर दर्ज किए गए निष्कर्ष, जो कि सिविल कोर्ट, जयपुर के निर्णय पर आधारित है, जिसमें 21 फरवरी, 1905 को निर्णय लिया था, वाद शीर्षक गगनबक्श बनाम प्रदर्श ए-8 को प्रत्यर्थी-अपीलार्थी द्वारा प्रतिकूल कब्जे की दलील पर वर्तमान अपील में चुनौती दी जा सकती है?
>
> (II) क्या प्रथम अपीलीय अदालत के दिनांक 3 अक्टूबर 1996 के आक्षेपित आदेश को चुनौती देना अपीलार्थी के लिए खुला है, विशेष रूप से जब संपत्ति के स्वामित्व के संबंध में प्रश्न उक्त वादी (अनजाने में प्रत्यर्थी के रूप में संदर्भित) के पक्ष में प्रदर्श ए-2 के माध्यम से विधिवत निष्पादित उपहार विलेख के आधार पर, वादी-प्रत्यर्थीगण द्वारा प्राप्त किया गया हो (प्रत्यर्थी-प्रत्यर्थी के रूप में अनजाने में संदर्भित किया गया हो)। हालांकि 30 जुलाई, 1994 के अपने आदेश में ट्रायल कोर्ट द्वारा निपटा गया है, लेकिन उससे पूर्णत: निपटाया नहीं गया है, क्या प्रथम अपीलीय अदालत द्वारा उसके आक्षेपित आदेश को चुनौती दी गई है?
>
> (III) क्या उपहार विलेख के प्रश्न पर ट्रायल कोर्ट द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्ष, जिसके आधार पर वादी-प्रत्यर्थी (अनजाने में प्रत्यर्थी-प्रत्यर्थी के रूप में संदर्भित) मुकदमे की संपत्ति पर स्वामित्व का दावा कर रहा है, को विकृत और बिना आधार के कहा जा सकता है क्योंकि इसके

समर्थन में कोई साक्ष्य नहीं है, खासकर तब जब प्रथम अपीलीय अदालत ने चुनौती के तहत अपने आक्षेपित आदेश आदेश में उक्त प्रश्न पर बिल्कुल भी विचार नहीं किया है?

(IV) क्या प्रत्यर्थी-अपीलार्थी (अनजाने में वादी-अपीलार्थी के रूप में संदर्भित) के बारे में यह कहा जा सकता है कि उसने वादी-प्रत्यर्थी (अनजाने में प्रत्यर्थी-प्रत्यर्थी के रूप में संदर्भित) के विरुद्ध अपना स्वामित्व प्राप्त कर लिया है कि वह प्रतिकूल कब्जे की दलील पर संपत्ति का मुकदमा करे, जिसने प्रदर्शन ए-2 के आधार पर उक्त संपत्ति पर अपना अधिकार, शीर्षक और हित स्थापित किया है जो कि उपहार विलेख है?

(V) क्या अपीलार्थी के प्रतिकूल कब्जे के प्रश्न पर निचली अदालत द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्षों को विकृत कहा जा सकता है?

3. कानून के महत्वपूर्ण प्रश्नों से निपटने से पहले, रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री के अनुसार वर्तमान मामले के जटिल इतिहास को निम्नानुसार दोहराया जा सकता है:-

<u>मामले का पिछला इतिहास</u>

i . प्रारंभ में, प्रत्यर्थी संख्या 1 वादी ने डिफॉल्ट और स्वामित्व से इनकार के आधार पर बेदखली के लिए वैकल्पिक रूप से 09.12.1964 को सिविल मुकदमा संख्या 513/1964 स्थापित किया जिसमें स्वामित्व के आधार पर कब्जे और प्रतिमाह मुनाफे के लिए दलीलें और प्रार्थना भी की गई थी। प्रतिस्पर्धी पक्ष, जो प्रत्यर्थी संख्या 1 है, ने किरायेदार की हैसियत से मुकदमे की संपत्ति पर अपने कब्जे से इनकार किया लेकिन मालिक के रूप में अपने कब्जे का दावा किया। दिनांक 16.09.1969 के निर्णय द्वारा प्रारंभ में मुकदमा गुणागुण के आधार पर अपास्त कर दिया गया। पहली अपील दायर करने पर, मालिकाना हक के आधार पर कब्जे का मुकदमा प्रत्यर्थी संख्या 1 के विरुद्ध निर्णय और डिक्री दिनांक 03.11.1980 द्वारा तय किया गया था। प्रत्यर्थी संख्या 1 के विधिक प्रतिनिधियों ने दूसरी अपील संख्या 61/1981 को प्राथमिकता दी और दूसरी अपील के चरण में, लिखित बयान में संशोधन की मांग करते हुए आदेश 6 नियम 17 सीपीसी के तहत एक आवेदन 26.07.1990 को दायर किया गया था। संशोधन के माध्यम से, प्रत्यर्थी संख्या 1

के विधिक प्रतिनिधियों ने प्रतिकूल कब्जे के माध्यम से सूट की संपत्ति का शीर्षक प्राप्त करने की दलील जोड़ने की मांग की। उच्च न्यायालय ने अपने निर्णय दिनांक 13.12.1990 द्वारा दूसरी अपील पर निर्णय लेते हुए, यह देखा गया कि चूंकि मुकदमे की संपत्ति में प्रत्यर्थी संख्या 1 की मौखिक किरायेदारी का तथ्य सिद्ध नहीं हुआ है, अतः पक्षकारों के बीच विवाद का असली प्रश्न प्रतिकूल कब्जे को लेकर है। उच्च न्यायालय ने संशोधन के लिए आवेदन स्वीकार कर लिया और प्रत्यर्थी द्वारा दावा किए गए प्रतिकूल कब्जे की दलील को जोड़ने की अनुमति दी। परिणामस्वरूप, कब्जे की डिक्री दिनांक 03.11.1980 को रद्द कर दी गई और लिखित बयान में संशोधन की अनुमति देने के बाद, सिविल सूट संख्या 513/1964 को ट्रायल कोर्ट (मुंसिफ वेस्ट), जयपुर सिटी, जयपुर को निर्देश के साथ भेज दिया गया कि ट्रायल कोर्ट संशोधित लिखित बयान के कारण उत्पन्न होने वाले अतिरिक्त मुद्दों को तय करेगी और फिर पक्षों को अतिरिक्त मुद्दों पर अतिरिक्त साक्ष्य प्रस्तुत करने की अनुमति देगी, और उसके बाद, ट्रायल कोर्ट मूल सिविल सूट संख्या 513/64 पर विधि के अनुसार नए सिरे से निर्णय करेगी।

ii. रिमांड के बाद, ट्रायल कोर्ट ने लिखित बयान में किए गए संशोधनों के अनुसार, प्रतिकूल कब्जे के माध्यम से मुकदमे की संपत्ति का विलेख प्राप्त करने के लिए प्रत्यर्थी संख्या 1 की याचिका से संबंधित अतिरिक्त मुद्दे संख्या 7क और 7ख में संबंधित साक्ष्य तय किए और पक्षकारों को अपना पक्ष रखने की अनुमति दी। इसके बाद, ट्रायल कोर्ट ने मुकदमे पर नए सिरे से निर्णय करते हुए वाद संख्या 4 का निर्णय वादी के पक्ष में किया, जो मुकदमे की संपत्ति के स्वामित्व से संबंधित था। प्रत्यर्थी संख्या 1 के विधिक प्रतिनिधियों द्वारा प्रतिकूल कब्जे के दावे के संबंध में अतिरिक्त मुद्दे संख्या 7 क और 7 ख, उनके विरुद्ध तय किए गए हैं और अंततः प्रतिमाह मुनाफे के साथ कब्जे के लिए प्रत्यर्थी-वादी के पक्ष में दिनांक 30.07.1994 के निर्णय के माध्यम से डिक्री पारित की गई है।

iii. प्रत्यर्थी संख्या 1 के विधिक प्रतिनिधियों ने प्रथम अपील दायर की। पहली अपील दिनांक 03.10.1996 के निर्णय के तहत योग्यता के आधार पर अपास्त कर दी गई, जिसमें कब्जे और मेस्ने मुनाफे के लिए डिक्री की पुष्टि की गई है। प्रथम अपीलीय अदालत ने भी प्रत्यर्थी संख्या 1 के विधिक प्रतिनिधियों द्वारा दावा किए गए प्रतिकूल कब्जे की याचिका को स्वीकार करने से इनकार कर दिया। इसलिए इस दूसरी अपील को

प्राथमिकता दी गई है, जिसमें कानून के उपरोक्त महत्वपूर्ण प्रश्न विचार के लिए तैयार किए गए हैं।

<u>मामले के तथ्य</u>

i) वर्तमान सिविल मुकदमे का नेतृत्व प्रत्यर्थी संख्या 1-वादी अर्थात् श्रीमती गोपाली देवी द्वारा किया गया था। प्रत्यर्थी संख्या 1 चौथमल (अब मृत और अपीलार्थीगण और प्रत्यर्थीगण संख्या 2, 3 और 4 के माध्यम से प्रतिनिधित्व किया गया) और प्रत्यर्थी संख्या 2 श्री के विरुद्ध प्रभु नारायण, जो वादी के पिता हैं, वादी ने एक मामला प्रस्तुत किया कि उसके पिता, प्रभु नारायण, प्रत्यर्थी संख्या 2, रास्ता राजा श्योदास जी, पुरानी बस्ती, जयपुर में स्थित दो चौकों की हवेली वाली घर की संपत्ति के मालिक थे जिसे शिकायत-पत्र के साथ संलग्न साइट प्लान में पीले एवं गुलाबी रंग में ए.बी.सी.डी. के रूप में अंकित किया गया है। यह आरोप लगाया गया था कि घर की संपत्ति का हिस्सा, जिसमें पीछे का *चौक, ताज, गोखा, खामघर और खमचबूतरी* के साथ टिन शेड की रसोई शामिल है, जिसे ई.एफ.जी.एच. के रूप में चिह्नित किया गया है और पीले रंग के साथ दिखाया गया है, उनके पिता प्रभु नारायण द्वारा वादी को उपहार विलेख दिनांक 19.01.1964 के माध्यम से 04.02.1964 को पंजीकृत किया गया था। यह आरोप लगाया गया था कि उस समय, प्रत्यर्थी संख्या 1 चोथमल के पास एफ.जी.एच. के रूप में चिह्नित घर की संपत्ति थी। प्रत्यर्थी संख्या 2 के किरायेदार के रूप में, किरायेदार हिस्से का प्रतीकात्मक कब्जा और शेष हिस्से का वास्तविक कब्जा वादी सौंप दिया गया था।

<u>टिप्पणी</u> - वर्तमान मुकदमे में, मुकदमे की संपत्ति में एफ.जी.एच. के रूप में चिह्नित हवेली का केवल एक हिस्सा शामिल है जिसमें खामघर, टिन शेड रसोई और खामचबूतरी के साथ पीछे का चौक, ताज और गोखा शामिल है, जिस पर प्रत्यर्थी संख्या 1 चोथमल का कब्जा था। हवेली के अन्य हिस्सों को वाद संपत्ति में शामिल नहीं किया गया है।

ii) वादी ने वाद में कहा कि चोथमल, प्रत्यर्थी संख्या 1 उसके पिता प्रभु नारायण, प्रत्यर्थी संख्या 2 का एफ.जी.एच. के रूप में चिह्नित घर के हिस्से में 02.03.1958 से 15/- रुपये प्रतिमाह के मासिक किराए पर किरायेदार था और उन्होंने केवल 01.12.1963 तक किराया चुकाया। उनकी किरायेदारी एक मौखिक किरायेदारी थी और प्रत्यर्थी संख्या 1 को प्रत्यर्थी संख्या 2 द्वारा वादी के पक्ष में किए गए उपहार विलेख के बारे में मौखिक रूप से सूचित

किया गया था और इस तरह कानून के संचालन से, प्रत्यर्थी संख्या 1 वादी का किरायेदार बन गया।

iii) वादी ने किराए के भुगतान में चूक और स्वामित्व से इनकार के आधार पर, प्रत्यर्थी संख्या 1 पर मुकदमे की संपत्ति में किरायेदार के रूप में आरोप लगाते हुए उसे बेदखल करने की मांग की।

(iv) यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि डिफ़ॉल्ट और स्वामित्व से इनकार के आधार पर बेदखली की प्रार्थना के विकल्प में, वादी ने प्रत्यर्थी संख्या 1 की किरायेदारी सिद्ध नहीं होने की स्थिति में, शीर्षक के आधार पर मुकदमे की संपत्ति पर कब्ज़ा करने की प्रार्थना की।

(v) वाद संपत्ति के शीर्षक के आधार पर कब्जे के लिए वैकल्पिक मामले के संबंध में, वाद में यह कहा गया था कि प्रत्यर्थी संख्या 2 प्रभु नारायण के पूर्वज, पूरी संपत्ति के मालिक थे, जिसमें दो चौक शामिल थे और ए.बी.सी.डी. के रूप में चिह्नित थे, जिसमें शामिल हैं वाद की संपत्ति अर्थात *खामघर का, पिछला चौक, ताज और गोखा के साथ खामचौतरी के साथ टिन शेड रसोईघर* जिसे एफ.जी.एच. के रूप में चिह्नित किया गया है। प्रत्यर्थी क्रमांक 2 और चंदर पुत्र डालू के पिता गंगाबख्श के बीच पूर्व में मुकदमा चल चुका था। इसका फैसला संपत्ति पर पूर्ण अधिकार का दावा करने वाले मुकदमे का निर्णय दिनांक 01.07.1908 के निर्णय और डिक्री द्वारा गंगाबक्श के पक्ष में और चंदर के विरुद्ध किया गया था और इस निर्णय और डिक्री दिनांक 01.07.1908 के माध्यम से, गंगाबक्श के पक्ष में एक घोषणात्मक डिक्री, स्वामित्व और विलेख प्रदान करते हुए तथा संपत्ति का हिस्सा गंगाबक्श के पक्ष में करते हुए पारित की गई थी। यह दलील दी गई कि उसके बाद, गंगाबक्श और चंदर के बीच समझौता हो गया, और बाद में मिती आषाढ़ बुदी 5 संवत-1967 को गंगाबक्श के पक्ष में एक किराया नोट निष्पादित किया गया। चंदर की मृत्यु के बाद, उनकी विधवा श्रीमती गौरा किरायेदार के रूप में मुकदमे की संपत्ति पर काबिज रही और उसने प्रत्यर्थी संख्या 2 के पक्ष में 02.03.1943 को एक किराया नोट निष्पादित किया। वाद-पत्र के अनुसार, श्रीमती गौरा ने वर्ष 1954 में मुकदमे की संपत्ति खाली कर दी और उसके बाद, प्रत्यर्थी संख्या 2 प्रभु नारायण ने मुकदमे की संपत्ति 02.03.1958 से प्रत्यर्थी संख्या 1, चोथमल को 5 रुपये के मासिक किराए पर दे दी। प्रत्यर्थी संख्या 1 चोथमल ने 01.12.1963 के बाद किराया नहीं दिया और इसलिए डिफ़ॉल्ट किया। इसके

अलावा, प्रत्यर्थी संख्या 1 ने मुकदमे की संपत्ति में किरायेदार के रूप में अपनी स्थिति से इनकार कर दिया, लेकिन प्रत्यर्थी संख्या 2 के साथ-साथ वादी के स्वामित्व का दावा किया, इसलिए डिफ़ॉल्ट और स्वामित्व से इनकार के आधार पर बेदखली की प्रार्थना की गई है। वैकल्पिक रूप से, यदि प्रत्यर्थी संख्या 1 की मौखिक किरायेदारी सिद्ध नहीं होती है, तो वादी ने अपने स्वामित्व के आधार पर प्रत्यर्थी संख्या 1 के विरुद्ध कब्जे की डिक्री के लिए गुहार लगाई और प्रार्थना की।

(vi) प्रत्यर्थी क्रमांक 1 चोथमल ने अपना लिखित बयान दिनांक 16.04.1965 को प्रस्तुत किया। प्रत्यर्थी संख्या 1 चोथमल ने मुकदमे की संपत्ति पर अपना कब्जा स्वीकार किया लेकिन स्पष्ट रूप से इनकार किया कि वह एफ.जी.एच. के रूप में चिह्नित मुकदमे की संपत्ति में किरायेदार था/है। इसके विपरीत, प्रत्यर्थी संख्या 1 ने समय से अपने स्वयं के और उसके पूर्वज के स्वामित्व का दावा किया। उसके 16.04.1965 को प्रस्तुत लिखित बयान में यह बात गौर करने लायक है, जिसका प्रत्यर्थी संख्या 1 ने कहीं भी खुलासा या विवरण नहीं दिया है कि वह कैसे और किस आधार पर मुकदमे की संपत्ति के स्वामित्व का दावा करता है।

यह भी ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि प्रत्यर्थी संख्या 1 ने दूसरी अपील के चरण में लिखित बयान में संशोधन करने के लिए आदेश 6 नियम 17 सीपीसी के तहत 26.07.1990 को एक आवेदन दायर किया था। संशोधन आवेदन में, प्रत्यर्थी संख्या 1 ने संशोधन करने और उन तथ्यों को जोड़ने की मांग की कि उसके पिता अर्थात लड्डू को चंदर और श्रीमती गौरा ने गोद लिया था और उस वंशावली तालिका के अनुसार, प्रत्यर्थी संख्या 1 चंदर और श्रीमती गौरा का पोता है। प्रत्यर्थी संख्या 1 ने वादी के लिए प्रतिकूल कब्जे की दलील जोड़ने की भी प्रार्थना की। उच्च न्यायालय ने दिनांक 13.12.1990 के निर्णय के तहत दूसरी अपील पर निर्णय लेते हुए कहा कि उन तथ्यों की पृष्ठभूमि में, जहां यह स्थापित नहीं है कि मुकदमे की संपत्ति 02.03.1958 को प्रत्यर्थी संख्या 1 को दे दी गई थी लेकिन वादी के पूर्ववर्तियों को इसके आधार पर मालिक घोषित कर दिया गया था। पिछले निर्णय दिनांक 01.07.1908 के अनुसार, प्रत्यर्थी संख्या 1 का प्रतिकूल कब्जे के माध्यम से स्वामित्व प्राप्त करने का दावा महत्व रखता है। तदनुसार, उच्च न्यायालय ने संशोधन आवेदन की अनुमति दी और प्रत्यर्थी संख्या 1 को अपने लिखित बयान में संशोधन करने की अनुमति दी। परिणामस्वरूप, अतिरिक्त मुद्दों को तैयार करने और पक्षों

को प्रतिकूल कब्जे के माध्यम से स्वामित्व प्राप्त करने के प्रत्यर्थी संख्या 1 के दावे से संबंधित संशोधित दलीलों पर साक्ष्य प्रस्तुत करने की अनुमति देने के बाद मुकदमे को नए सिरे से निर्णय लेने के लिए ट्रायल कोर्ट में वापस भेज दिया गया था।

(vii) प्रत्यर्थी संख्या 2 अर्थात् प्रभु नारायण ने वादी के मामले के समर्थन में अपना लिखित बयान प्रस्तुत किया।

(viii) विद्वान ट्रायल कोर्ट ने वादी और प्रत्यर्थी संख्या 1 की प्रतिद्वंद्वी दलीलों के अनुसार मुद्दों का निपटारा किया। मुद्दा संख्या 1 वादी के पक्ष में प्रत्यर्थी संख्या 2 द्वारा उपहार विलेख दिनांक 29.01.1964 के निष्पादन और वादी और प्रत्यर्थी संख्या 1 के मकान मालिक और किरायेदार के संबंध से संबंधित है। मामला संख्या 2 डिफॉल्ट को लेकर है। मुद्दा क्रमांक 3 स्वामित्व से इनकार के आधार पर बेदखली डिक्री का दावा करने के संबंध में है। मुद्दा संख्या 4 मुकदमे की संपत्ति के वादी के स्वामित्व के संबंध में है और इसके परिणामस्वरूप क्या वादी प्रत्यर्थी संख्या 1 के विरुद्ध कब्जे की डिक्री का पात्र है। मुद्दा संख्या 5 औसत लाभ के दावे के लिए है। मुद्दा संख्या 6 वाद संपत्ति के मूल्यांकन और न्यायालय शुल्क से संबंधित है। लिखित बयान में संशोधन की अनुमति देने के बाद अतिरिक्त रूप से तैयार किया गया मुद्दा संख्या 7ए, प्रत्यर्थी की यह दावा करने की दलील के संबंध में है कि उन्होंने प्रतिकूल कब्जे के माध्यम से मुकदमे की संपत्ति पर मालिकाना हक प्राप्त कर लिया है और मुकदमा शुरू होने से पहले 12 वर्ष तक लगातार कब्जा किया था। मुद्दा संख्या 7 ख प्रत्यर्थी संख्या 1 की वंशावली को स्वर्गीय चंदर और श्रीमती गौरा के वंशज और सजातीय होने को सिद्ध करने से संबंधित है, जैसा कि लिखित बयान में संशोधन के माध्यम से दावा किया गया है। मुद्दा संख्या 7 राहत देने वाला है।

(ix) विद्वान ट्रायल कोर्ट ने वादी के विरुद्ध मुद्दा संख्या 1, 2 और 3 का निर्णय करते हुए कहा कि यह सिद्ध नहीं हुआ है कि मुकदमे की संपत्ति प्रत्यर्थी संख्या 2 द्वारा 02.03.1958 को प्रत्यर्थी संख्या 1 को मौखिक रूप से किराए पर दी गई थी, जैसा कि वादी में दलील दी गई थी। ट्रायल कोर्ट ने वाद क्रमांक 1 का निर्णय करते हुए माना है कि प्रत्यर्थी क्रमांक 2 द्वारा वादी के पक्ष में दिनांक 29.01.1964 के उपहार विलेख का निष्पादन सिद्ध होता है। यह ध्यान दिया जा सकता है कि उपहार विलेख पर प्रत्यर्थी द्वारा प्रश्न नहीं उठाया गया है और न ही चुनौती दी गई है। मुद्दा क्रमांक 4 वादी के पक्ष में रखा गया है और वादी को मुकदमे में संपत्ति का मालिक माना गया है, मूल रूप से

दिनांक 01.07.1908 की घोषणात्मक डिक्री के आधार पर, वादी श्री गंगाबक्श के पूर्ववर्तियों के पक्ष में पारित की गई। वाद संख्या 4 के खंडन में प्रत्यर्थी संख्या 1 द्वारा स्वामित्व के दावे पर अविश्वास/अस्वीकार किया गया है। मुद्दा संख्या 7ए और 7बी पर निर्णय करते समय, ट्रायल कोर्ट ने पाया कि प्रत्यर्थी संख्या 1 चंदर और श्रीमती गौरा के पोते के रूप में श्री लड्डू को अपनाने के संबंध में अपनी स्थिति दिखाने के लिए वंशावली सिद्ध नहीं कर सका। प्रत्यर्थी संख्या 1 के पिता, चंदर और श्रीमती गौरा को बाद में वंशज माना गया, जिसे 25 वर्ष बाद लिखित बयान में संशोधन के माध्यम से जोड़ा गया और गोद लेने को सिद्ध करने के लिए साक्ष्य नहीं थे, इसलिए इसे सिद्ध नहीं किया गया। प्रत्यर्थी संख्या 1 का कब्ज़ा चंदर और श्रीमती गौरा के कब्जे की निरंतरता में है। ट्रायल कोर्ट ने पाया कि प्रत्यर्थी संख्या 1 ने श्रीमती गौरा की वर्ष 1956 में मृत्यु के बाद मुकदमे की संपत्ति पर कब्ज़ा कर लिया। इसलिए वर्ष 1964 में मुकदमा शुरू होने से पहले लगातार 12 वर्षों तक स्वतंत्र कब्ज़ा रखने का उनका दावा सिद्ध नहीं हुआ है और तदनुसार, प्रतिकूल कब्जे के आधार पर स्वामित्व प्राप्त करने का दावा करने के लिए प्रत्यर्थी की दलील को मना कर दिया था। मुद्दे संख्या 7ए और 7बी का निर्णय प्रत्यर्थी संख्या 1 के विरुद्ध हुआ। वाद क्रमांक 5 एवं 6 का निर्णय वादी के पक्ष में किया गया। अंत में, विद्वान ट्रायल कोर्ट ने निर्णय और डिक्री दिनांक 30.07.1994 के माध्यम से प्रत्यर्थी संख्या 1-वादी के कब्जे के मुकदमे को प्रतिमाह लाभ के साथ डिक्री कर दिया।

(x) मृतक प्रत्यर्थी संख्या 1 के विधिक प्रतिनिधियों ने प्रथम अपील दायर करके दिनांक 30.07.1994 के कब्जे और प्रतिमाह मुनाफे के निर्णय और डिक्री को चुनौती दी। प्रथम अपीलीय अदालत ने पूरे मामले की दोबारा सुनवाई और पुनर्विचार किया है और देखा कि जहां तक संबंधों से संबंधित मुद्दों का संबंध है मकान मालिक और किरायेदार चिंतित हैं कि उन्हें पिछले निर्णयों दिनांक 16.09.1969 और 03.11.1980 में वादी के विरुद्ध निर्णय सुनाया गया है और उच्च न्यायालय ने, दिनांक 13.12.1980 के निर्णय के तहत लिखित बयान में संशोधन की अनुमति देने के बाद मुकदमे को रद्द कर दिया क्योंकि मुद्दा संख्या 1,2 और 3 के निष्कर्षों को प्रभावित किया गया था। हालांकि, रिमांड के बाद, ट्रायल कोर्ट ने फिर से वादी के विरुद्ध गुणागुण के आधार पर मुद्दा संख्या 1 से 3 का निर्णय किया और स्वामित्व के आधार पर कब्जे के लिए डिक्री पारित की। इस डिक्री को पहली अपील में चुनौती दी गई है, इसलिए, विचार के लिए मुद्दे ट्रायल कोर्ट द्वारा पारित

निष्कर्षों तक ही सीमित हैं। मुद्दे संख्या 4, 7ए और 7बी के संबंध में, प्रथम अपीलीय अदालत ने भी प्रत्यर्थी-अपीलार्थी के प्रतिकूल स्वामित्व की दलील को स्वीकार करने से इनकार कर दिया और पिछले निर्णय दिनांक 01.07.1908 के आधार पर वादी को मुकदमे की संपत्ति का मालिक मानने से इनकार कर दिया, कब्जे और प्रतिमाह मुनाफे के लिए डिक्री की पुष्टि की और दिनांक 03.10.1996 के निर्णय के तहत योग्यता के आधार पर पहली अपील को अपास्त कर दिया।

(xi) यहां यह नोट करना प्रासंगिक हो सकता है कि एफ.जी.एच. के रूप में चिह्नित वाद संपत्ति, घर की संपत्ति (हवेली) का हिस्सा है जिसे ए.बी.सी.डी के रूप में वाद के साथ संलग्न साइट मानचित्र में चिह्नित किया गया है। वादी के पूर्ववर्ती, गंगाबक्श को संपूर्ण गृह संपत्ति और वाद संपत्ति एफ.जी.एच. का स्वामी घोषित किया गया था जो केवल एक भाग है। यह रिकॉर्ड में आया है कि घर की संपत्ति के सामने वाले चौक वाले हिस्से में, एक व्यक्ति, चुथन लाल किरायेदार था, जिसके विरुद्ध मुकदमा दायर किया गया था और उसी पर डिक्री हुई थी (प्रदर्श ए3)। उसने उसे खाली कर दिया है और कब्जा वादी के पिता को सौंप दिया है। वर्तमान मुकदमे में वाद संपत्ति घर की संपत्ति (हवेली) का हिस्सा है जिसमें पीछे का चौक भी शामिल है।

4. उपर्युक्त तथ्यों की पृष्ठभूमि के साथ, यह स्पष्ट है कि कब्जे और प्रतिमाह मुनाफे के लिए आक्षेपित डिक्री प्रत्यर्थी संख्या 1-वादी के पक्ष में पारित की गई है, जो वादी के पूर्ववर्तियों अर्थात् गंगाबक्श के स्वामित्व और प्रत्यर्थी के विधिक प्रतिनिधियों की दलील के आधार पर पारित की गई है। प्रतिकूल कब्जे के माध्यम से वाद संपत्ति का स्वामित्व प्राप्त करने के लिए संख्या 1 को स्वीकार नहीं किया गया है। इसलिए, वर्तमान मामले में कानून के महत्वपूर्ण प्रश्नों की ऐसे तथ्यात्मक मैट्रिक्स की पृष्ठभूमि में जांच की जानी आवश्यक है।

<u>बेदखली वाद में कब्जे की डिक्री पारित करने पर आपत्ति</u>

5. अपीलार्थीगण के अधिवक्ता ने वर्तमान अपील में बनाए गए कानून के महत्वपूर्ण प्रश्नों पर अपनी दलीलें देने के अलावा, एक अतिरिक्त तर्क भी उठाया है कि प्रत्यर्थी संख्या 1-वादी ने बेदखली और किराए के बकाया के लिए मुकदमा दायर किया है और इसमें कब्जे और प्रतिमाह लाभ के आधार पर एक वैकल्पिक प्रार्थना की है जिसे वादी के विलेख पर बनाया गया था। उनका कहना है कि बेदखली और किराए की बकाया राशि के सिविल मुकदमे में

स्वामित्व के आधार पर कब्जे की डिक्री पारित नहीं की जा सकी। अपने तर्क के समर्थन में, उन्होंने **राजेंद्र तिवारी बनाम बासुदेव प्रसाद [(2002) 1 एससीसी 90] और त्रिभुवनशकर बनाम अमृतलाल [(2014) 2 एससीसी 788]** के मामले में पारित निर्णयों पर भरोसा रखा है।

6. दूसरी अपील के चरण में अंतिम बहस के दौरान पहली बार उठाए गए ऐसे अतिरिक्त तर्क से निपटने के लिए, शुरुआत में यह देखा जा सकता है कि ऐसे तर्क दोनों पक्षों की दलीलों से उत्पन्न नहीं होते हैं और न ही ट्रायल कोर्ट या प्रथम अपीलीय अदालत के समक्ष ऐसी कोई आपत्ति पहले उठाई गई थी। यहां तक कि इस दूसरी अपील को सुनवाई के लिए स्वीकार किए जाने के समय भी, कानून का ऐसा कोई महत्वपूर्ण प्रश्न तैयार नहीं किया गया है। एक इस तथ्य को स्वीकार किया गया कि वाद-पत्र की दलीलों में वादी ने वादी के स्वामित्व के आधार पर कब्जे और प्रतिमाह लाभ के लिए डिक्री पारित करने का अनुरोध और प्रार्थना की है, यदि प्रत्यर्थी संख्या 1 के मुकदमे की संपत्ति में उसका किरायेदार सिद्ध नहीं होता है। वाद-पत्र के अभिवचनों में यह दर्शाने के लिए एक कथन है कि मुकदमे की संपत्ति का स्वामित्व वादी में कैसे निहित है। वादी ने वाद-पत्र में खुलासा किया था कि उसका पूर्ववर्ती अर्थात गंगाबक्श संपत्ति का मालिक था और गंगाबक्श के पक्ष में पारित निर्णय और डिक्री दिनांक 01.07.1908 का संदर्भ वाद-पत्र में दिया गया था। गंगाबक्श वादी के दादा थे। यह दलील दी गई कि वादी के पिता ने 04.02.1964 को पंजीकृत उपहार विलेख दिनांक 29.01.1964 के माध्यम से वादी को संपत्ति का हिस्सा उपहार में दिया है। लिखित बयान में, प्रत्यर्थी संख्या 1 ने मुकदमे की संपत्ति पर अपने स्वामित्व का दावा किया और वादी के किरायेदार के रूप में अपनी स्थिति से इनकार किया। 16.04.1965 को प्रत्यर्थी संख्या 1 द्वारा दायर पहले लिखित बयान में, प्रत्यर्थी संख्या 1 ने अपने पूर्वजों के समय से मुकदमे की संपत्ति पर अपना स्वामित्व बताया, लेकिन कोई विवरण नहीं दिया गया और बाद में संशोधन के लिए दिनांक 26.07.1990 के माध्यम से एक आवेदन दिया गया। प्रत्यर्थी संख्या 1 ने अतिरिक्त तथ्य जोड़ने की मांग करते हुए लिखित बयान में संशोधन करने की प्रार्थना की है कि उसने प्रतिकूल कब्जे के आधार पर मुकदमे की संपत्ति का विलेख प्राप्त कर लिया है और साथ ही स्वर्गीय चंदर और श्रीमती गौरा के माध्यम से अपने कब्जे का दावा किया है, इस पृष्ठभूमि के साथ कि प्रत्यर्थी संख्या 1 के पिता अर्थात् लड्डुलाल को चंदर और एमएसटी ने गोद लिया था। इसलिए, प्रत्यर्थी संख्या 1 ने खुद को श्रीमती गौरा का पोता होने का दावा किया। अपीलार्थीगण द्वारा उनकी पिछली

दूसरी अपील संख्या 61/1981 के स्तर पर संशोधन आवेदन दायर किया गया था उच्च न्यायालय. की अर्जी पर सुनवाई करते हुए उच्च न्यायालय ने द्वितीय अपील के साथ लिखित बयान में संशोधन की मांग करते हुए स्वयं अपने अंतिम आदेश दिनांक 13.12.1990 में देखा गया कि चूंकि यह स्थापित नहीं है कि मुकदमे की संपत्ति प्रत्यर्थी संख्या 1 को 02.03.1958 को मौखिक रूप से दी गई थी और मुकदमे की संपत्ति का स्वामित्व वादी गंगाबक्श के पूर्ववर्ती के पास है। इसलिए, प्रतिकूल कब्ज़ा प्राप्त करने की दलील लेने के लिए प्रत्यर्थीगण का प्रस्तावित संशोधन महत्व रखता है। तदनुसार, उच्च न्यायालय ने दिनांक 13.12.1990 के अपने निर्णय में संशोधन के लिए आवेदन की अनुमति दी और अपीलार्थी-प्रत्यर्थी संख्या 1 को प्रतिकूल कब्जे के माध्यम से स्वामित्व प्राप्त करने की दलील देते हुए अपने लिखित बयान में संशोधन करने की अनुमति दी और मुकदमे को अतिरिक्त मुद्दों को तैयार करने और पक्षों को संशोधित दलीलों पर अतिरिक्त साक्ष्य प्रस्तुत करने की अनुमति देने के बाद नए सिरे से निर्णय लेने के लिए ट्रायल कोर्ट के बाद वापस भेज दिया।

7. इसलिए, रिमांड के बाद, वर्तमान मुकदमा वास्तव में प्रतिमाह लाभ के साथ कब्जे का मुकदमा बनकर रह गया था और बचाव में प्रत्यर्थी संख्या 1 की प्रतिकूल कब्जे के माध्यम से स्वामित्व प्राप्त करने की याचिका पर निर्णय किया जाना था। ऐसी परिस्थितियों में, वर्तमान मुकदमा डिफ़ॉल्ट और स्वामित्व से इनकार के आधार पर राजस्थान किराया नियंत्रण अधिनियम, 1950 के दायरे तक सीमित नहीं था।

8. अपीलार्थी-प्रत्यर्थी शुरू से ही अच्छी तरह से जानते हैं कि वर्तमान मुकदमा स्वामित्व के आधार पर कब्जे और प्रतिमाह लाभ का मुकदमा है और उन्होंने तदनुसार लिखित बयान में अपना बचाव किया है। दोनों पक्षों की प्रतिद्वंद्वी दलीलों के अनुसार विशिष्ट मुद्दा संख्या 4 निम्नानुसार तैयार किया गया था:-

> "क्या वादी एफ.जी.एच. का मालिक है?" संपत्ति और यदि प्रत्यर्थी की किरायेदारी सिद्ध नहीं होती है, तो उसके विलेख के आधार पर वादी एफ.जी.एच. घरों के कब्जे के लिए डिक्री का पात्र है?"

9. इसके बाद, संशोधित लिखित बयान में, प्रत्यर्थी संख्या 1 ने प्रतिकूल कब्जे के माध्यम से स्वामित्व प्राप्त करने का दावा करते हुए दलीलें जोड़ीं और तदनुसार मुद्दा संख्या 7-ए

भी तैयार किया गया, जो इस प्रकार है:-

> "क्या प्रत्यर्थीगण के पूर्ववर्ती अर्थात् श्रीमती गौरा का मुकदमे की संपत्ति पर 1951 से पहले से कब्जा है और प्रत्यर्थी मुकदमा दायर होने से 12 वर्ष पहले से लगातार कब्जे में थे, इसलिए, प्रतिकूल कब्जे के आधार पर प्रत्यर्थी का हक मुकदमे पर पूर्ण हो गया है?"

10. अपीलार्थीगण-प्रत्यर्थीगण ने अपना स्वामित्व दिखाने के लिए और प्रतिकूल कब्जे के माध्यम से वाद संपत्ति का स्वामित्व प्राप्त करने की अपनी दलील को सिद्ध करने के लिए अपने साक्ष्य प्रस्तुत किए हैं। इसके बाद, ट्रायल कोर्ट के साथ-साथ प्रथम अपीलीय अदालत ने मुकदमे की संपत्ति के स्वामित्व के मुद्दे पर दोनों पक्षों के साक्ष्य का अवलोकन किया है और मुद्दा संख्या 4 का निर्णय वादी के पक्ष में सुनाया गया है और मुद्दा संख्या 7-ए का प्रत्यर्थीगण के विरुद्ध निर्णय किया गया है। यह ध्यान दिया जा सकता है कि यद्यपि उच्च न्यायालय द्वारा दिनांक 13.12.1990 के निर्णय के तहत मुकदमे की रिमांड के बाद, जब किरायेदारी से संबंधित मुद्दे वादी के विरुद्ध दोनों न्यायालयों द्वारा अपने पिछले निर्णय दिनांक 16.09.1969 और 03.11.1980 में पहले ही तय किए जा चुके हैं और उच्च न्यायालय ने उन मुद्दों के निष्कर्षों को प्रभावित नहीं किया और मामले को वापस भेज दिया, मुख्य रूप से लिखित बयान में संशोधन की अनुमति देने, प्रत्यर्थी को प्रतिकूल कब्जे की दलील लेने की अनुमति देने के कारण, ट्रायल कोर्ट को मुद्दे संख्या 1 पर 3 नए सिरे से बेदखली के आधार से संबंधित निर्णय लेने की आवश्यकता नहीं थी। जो भी हो, यदि रिमांड के बाद ट्रायल कोर्ट ने दिनांक 30.07.1994 के निर्णय में इन मुद्दों संख्या 1 से 3 को नए सिरे से तय किया, तो प्रथम अपीलीय अदालत ने अपने दिनांक 03.10.1996 के निर्णय में प्रथम अपीलीय अदालत ने **मोहन लाल बनाम आनंदीबाई** [**एआईआर** 1971 **एससी** 2177] के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय का निर्णय पर भरोसा करते हुए इस स्थिति को स्पष्ट कर दिया है। यह देखा गया है कि मकान मालिक और किरायेदार के संबंधों से संबंधित मुद्दे संख्या 1 और 2 पर दोनों न्यायालयों के निष्कर्षों को मुकदमे को रिमांड पर लेते समय उच्च न्यायालय द्वारा रद्द नहीं किया गया था, इसलिए, उन निष्कर्षों को अंतिम रूप दिया गया है। इसलिए, ऐसे तथ्यात्मक मैट्रिक्स की पृष्ठभूमि में, वर्तमान मुकदमे को केवल राजस्थान किराया नियंत्रण अधिनियम, 1950 के दायरे में बेदखली के मुकदमे के रूप में नहीं माना जा सकता है।

11. **राजेंद्र तिवारी** (**सुप्रा**.) के मामले में दिए गए माननीय उच्चतम न्यायालय के निर्णय को **त्रिभुवनशंकर** (**सुप्रा**.) के बाद के निर्णय में संदर्भित किया गया है, जिस पर अपीलार्थीगण के अधिवक्ता ने भरोसा किया और कानून का प्रस्ताव निम्नानुसार निर्धारित किया गया है:-

> "उपरोक्त प्राधिकारों में बताए गए सिद्धांत के स्पष्ट विश्लेषण पर, यह काफी स्पष्ट है कि जब सिविल कोर्ट संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम के प्रावधानों के तहत उसके सामने लाए गए बेदखली से संबंधित मामले से निपटता है तो निर्दिष्ट आधारों पर बेदखली से संबंधित किसी विशेष अधिनियम के तहत क्षेत्राधिकार के प्रयोग में अंतर होता है। **कहने की जरूरत नहीं है, इस न्यायालय ने सावधानी से जोड़ा है कि यदि अधिनियम के दायरे में वैकल्पिक राहत की अनुमति है, तो स्थिति अलग होगी।** इसके अलावा, न्यायालय स्वामित्व के मुद्दे पर निर्णय कर सकती है यदि कोई किरायेदार इस पर विवाद करता है और इसका एकमात्र उद्देश्य यह देखना है कि किरायेदार द्वारा मकान मालिक के स्वामित्व से इनकार करना मामले की परिस्थितियों में प्रामाणिक है या नहीं। हम सम्मानपूर्वक उपरोक्त दृष्टिकोण से सहमत हैं और हमें यह मानने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि भगवती प्रसाद (सुप्रा.) और बिश्वनाथ अग्रवाल (सुप्रा.) में दिए गए आदेश अलग-अलग हैं, क्योंकि उक्त मामलों में संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम के तहत मुकदमे दायर किए गए थे, जहां आदेश VII नियम 7 के तहत न्यायसंगत राहत दी जा सकती थी।

12. यह ध्यान दिया जा सकता है कि राजस्थान परिसर (किराए और बेदखली का नियंत्रण), अधिनियम, 1950 के प्रावधानों के तहत बेदखली का मुकदमा सिविल कोर्ट के समक्ष दायर किया जाता है और इसमें पैरवी करने पर कोई प्रतिबंध नहीं है। स्वामित्व के आधार पर कब्जे के लिए वैकल्पिक प्रार्थना करें। **श्रीमती पुष्पा शर्मा बनाम गोपाल लाल रावत** [**एआईआर** 1986 **राजस्थान** 187] के मामले में राजस्थान उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने इस पहलू पर विचार किया कि राजस्थान किराया नियंत्रण अधिनियम, 1950 की धारा 13 के तहत निर्धारित आधार पर बेदखली के मुकदमे में वादी के पक्ष में उसके

विलेख के कब्जे की डिक्री दी जा सकती है। निम्नलिखित दो मुद्दों को पूर्ण पीठ द्वारा निर्णय लेने के लिए भेजा गया था:-

> "(i) क्या मकान मालिक और किरायेदार के बीच संबंधों पर आधारित मुकदमे में, जब राजस्थान परिसर (किराया और बेदखली का नियंत्रण), अधिनियम, 1955 की धारा 13 के तहत निर्धारित आधार पर बेदखली के लिए प्रार्थना की जा रही हो, तो वादी को उसके विलेख के आधार कब्जे के लिए डिक्री दी जा सकती है?
>
> (ii) "क्या जब वर्तमान मुद्दे को वादी के स्वामित्व के आरोपों का भी उल्लेख करते हुए तैयार किया गया है, तो प्रत्यर्थी अपने स्वयं के शीर्षक का दावा करता है और वादी और दोनों पक्षों के साक्ष्य से इनकार करता है, तो क्या यह कहा जा सकता है कि डिक्री के कारण प्रत्यर्थी पर कोई पूर्वाग्रह नहीं होता है क्योंकि कब्ज़ा वादी के स्वामित्व के प्रमाण पर आधारित है?"

अधिनियम 1950 की योजना और उसके दायरे पर चर्चा करने के बाद पक्षों की दलीलों पर, दोनों प्रश्नों का उत्तर निम्नानुसार दिया गया:-

> "इसलिए संदर्भित प्रश्नों पर हमारा उत्तर है:
>
> (1) मकान मालिक और किरायेदार के बीच संबंधों पर आधारित एक मुकदमे में, राजस्थान परिसर (किराया और बेदखली का नियंत्रण) अधिनियम, 1950 की धारा 13 के तहत निर्धारित आधार पर बेदखली के लिए प्रार्थना करते हुए, कब्जे के पक्ष में वादी के विलेख के आधार पर डिक्री दी जा सकती है।
>
> (2) जब कोई मुद्दा वादी के स्वामित्व के आरोप के आधार पर तय किया जाता है और प्रत्यर्थी अपने स्वयं के स्वामित्व का दावा करता है और वादी के स्वामित्व से इनकार करता है और दोनों पक्ष बिना किसी आपत्ति के साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं, तो डिक्री के कारण प्रत्यर्थी के कारण होने वाले पूर्वाग्रह का प्रश्न देखा जा सकता है क्योंकि कब्ज़ा वादी के स्वामित्व के साक्ष्य पर दिया जाना है।"

13. इस प्रकार, उपरोक्त चर्चा के बाद, अपीलार्थीगण द्वारा उठाया गया पहला तर्क बेतुका लगता है और इसका कोई मतलब नहीं है वर्तमान दूसरी अपील में कानून का कोई भी महत्वपूर्ण प्रश्न उठेगा।

<u>कानून के महत्वपूर्ण प्रश्नों पर चर्चा</u>

14. विधि संख्या I और V के महत्वपूर्ण प्रश्न:-

i) क्या ट्रायल कोर्ट द्वारा 30 जुलाई, 1994 के अपने निर्णय और डिक्री में मुकदमे की संपत्ति के मालिकाना हक के प्रश्न पर दर्ज किए गए निष्कर्ष, जो कि सिविल कोर्ट, जयपुर के निर्णय पर आधारित है, ने 21 फरवरी, 1905 को गगनबक्स बनाम मुकदमे के मुकदमे में निर्णय सुनाया था कि प्रदर्श ए-8 को प्रतिकूल कब्जे की दलील पर प्रत्यर्थी-अपीलार्थी द्वारा वर्तमान अपील में चुनौती दी जा सकती है?

ii) क्या अपीलार्थी के प्रतिकूल कब्जे के प्रश्न पर नीचे की न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्षों को विकृत कहा जा सकता है?

15. विधि संख्या I और V के महत्वपूर्ण प्रश्न आपस में जुड़े हुए हैं और इन्हें एक साथ निपटाया जा सकता है। विधि के इन सवालों का उत्तर देने के लिए, अपीलार्थीगण-प्रत्यर्थीगण द्वारा प्रतिकूल कब्जे के आधार पर मुकदमे की संपत्ति पर अपना स्वामित्व प्राप्त करने का दावा करने के मूल आधार को देखा जाना चाहिए। वाद-पत्र में वादी ने अनुरोध किया है कि संपत्ति (हवेली) को ए.बी.सी.डी. के रूप में चिह्नित किया गया है। मकान ई.एफ.जी.एच. का कब्ज़ा और स्वामित्व उसके पिता-प्रत्यर्थी संख्या 2 प्रभु नारायण का है, जिन्होंने वाद संपत्ति उपहार में दी थी। *बाहरी चौक, ताज और गोखा* के साथ उन्हें उपहार विलेख दिनांक 29.01.1964 के माध्यम से 04.02.1964 को पंजीकृत किया गया। आगे दलील दी गई कि गंगाबक्श, जो प्रत्यर्थी संख्या 2 के पिता थे, चंदर पुत्र डालू के विरुद्ध संपत्तियों पर अपने अधिकार और स्वामित्व का दावा करने वाले सिविल मुकदमे में सफल हुए हैं और मुकदमा दिनांक 01.07.1908 के निर्णय के तहत सुनाया गया था। दिनांक 01.07.1908 का निर्णय और डिक्री साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत किया गया है और प्रदर्श ए2 के रूप में रिकॉर्ड पर उपलब्ध है। प्रथम अपीलीय अदालत ने स्पष्ट रूप से कहा है कि यह निर्णय एक घोषणात्मक डिक्री है जो वादी के पूर्ववर्ती अर्थात गंगाबक्श को संपत्ति

के स्वामित्व की पुष्टि करती है। प्रत्यर्थीगण ने इस निर्णय और डिक्री के पारित होने पर विवाद नहीं किया है। यह निर्णय एवं डिक्री डालू पुत्र चंदर के विरुद्ध पारित की गई। यह रिकार्ड में आया है कि श्रीमती गौरा चंदर की पत्नी थी। प्रत्यर्थीगण का तर्क यह है कि चूंकि उनके पिता लड्डूलाल ने चंदर और श्रीमती गौरा को गोद ले लिया था, वह उनका पोता बन गया और इस तरह उनके लंबे समय तक कब्जे के कारण, कब्जा वादी के प्रतिकूल हो गया है। इस प्रकार, प्रत्यर्थी संख्या 1 अपने दादा और दादी चंदर और श्रीमती गौरा के समय से अपने लंबे कब्जे के आधार पर मुकदमे की संपत्ति का स्वामित्व प्राप्त करने का दावा करता है। इसलिए, इस तरह का तर्क देते समय, प्रत्यर्थी संख्या 1 ने निर्णय और डिक्री दिनांक 01.07.1908 के माध्यम से वादी के पूर्ववर्ती गंगाबक्श के पक्ष में संपत्ति के स्वामित्व पर विवाद नहीं किया है। विचारणीय मुद्दा यह है कि क्या प्रत्यर्थी क्रमांक 1 का कब्ज़ा वादी के प्रतिकूल हो गया है।

16. इस संबंध में, प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता ने **ब्रिजेश कुमार बनाम शारदाबाई [(2019) 9 एससीसी 369]** के मामले में दिए गए माननीय उच्चतम न्यायालय के निर्णय पर भरोसा जताया है। प्रतिकूल कब्जे के संबंध में कानून दिखाने के लिए निर्णय का पैरा 13 इस प्रकार है:-

> "13. जैसा कि एम.वेंकटेश (सुप्रा.) में माना गया है, प्रतिकूल कब्ज़ा वास्तविक मालिक के शीर्षक को अस्वीकार करते हुए शत्रुतापूर्ण स्वामित्व का दावा करके शत्रुतापूर्ण कब्ज़ा है। प्रत्यर्थी शांतिपूर्ण, खुला और निरंतर कब्ज़ा स्थापित करने में विफल रहा, जो कि सही मालिक को गलत तरीके से बेदखल करना दर्शाता है। इस प्रकार इसमें तथ्यों और कानून का प्रश्न शामिल था। यह स्थापित करने का उत्तरदायित्व प्रत्यर्थी पर है कि वह कब और कैसे कब्ज़े में आया, उसके कब्जे की प्रकृति क्या थी, क्या लगातार 12 वर्ष के कब्जे, जो खुला और अबाधित था, का तथ्य ज्ञात था और या अन्य पक्षों के लिए शत्रुतापूर्ण था। प्रत्यर्थी असली मालिक के अधिकारों से इनकार करना चाह रहा था। इसलिए उत्तरदायित्व प्रत्यर्थी पर है कि वह कब्ज़े को एक तथ्य के रूप में स्थापित करे, साथ ही यह भी कि यह खुला, शत्रुतापूर्ण और वास्तविक मालिक की जानकारी के लिए निरंतर था।

प्रत्यर्थी-वादी दायित्व का निर्वहन करने में विफल रहा। यहाँ प्रतिकूल कब्जे पर चट्टी कोनती राव एवं अन्य बनाम पल्ले वेंकट सुब्बा राव का भी संदर्भ लिया जा सकता है जिसमें निम्नानुसार अवलोकन किया गया है:

"15. एनिमस पॉसिडेंडी, जैसा कि सर्वविदित है, प्रतिकूल कब्जे का एक आवश्यक घटक है। केवल कब्ज़ा स्वामित्व ही स्वामित्व में परिवर्तित नहीं होता है जब तक कि मालिक उक्त उद्देश्य के लिए संपत्ति को वास्तविक मालिक के विलेख के प्रतिकूल नहीं रखता है। जो व्यक्ति प्रतिकूल कब्जे का दावा करता है, उसे उस तारीख को स्थापित करना आवश्यक है जिस दिन वह कब्जे में आया, कब्जे की प्रकृति, कब्जे का तथ्य, वास्तविक मालिक को ज्ञान, कब्जे की अवधि और यह कि कब्जा खुला और अबाधित था। प्रतिकूल कब्जे की दलील देने वाले व्यक्ति के पक्ष में कोई साम्या नहीं है क्योंकि वह असली मालिक के अधिकारों को पराजित करने की कोशिश कर रहा है और इसलिए, प्रतिकूल कब्जे को स्थापित करने के लिए आवश्यक सभी तथ्यों को स्पष्ट रूप से दलील देना और स्थापित करना उसका काम है। संपत्ति के अधिकारों को प्रभावित करने वाली परिसीमा क़ानूनों के प्रति न्यायालय हमेशा निर्दयी दृष्टिकोण अपनाती हैं। प्रतिकूल कब्जे की दलील तथ्य और कानून के मिश्रित रूप से प्रतिकूल की अवधारणा के संबंध में कानून का शुद्ध प्रश्न नहीं है।"

17. प्रतिकूल कब्जे की अवधारणा मूल रूप से एक शत्रुतापूर्ण कब्ज़े पर विचार करती है जिसके द्वारा सच्चे मालिक के स्वामित्व से इनकार किया जाता है। कब्जे में बने रहने के कारण, मालिक को वास्तविक मालिक की उपाधि पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। दरअसल, वह इसी बात पर विवाद करते हैं। इसलिए, जब प्रत्यर्थीगण ने प्रतिकूल कब्जे के माध्यम से मुकदमे की संपत्ति का स्वामित्व प्राप्त करने के बचाव का सहारा लिया है, तो वे वादी और वादी के पूर्ववर्ती गंगाबक्श के स्वामित्व पर विवाद नहीं कर सकते हैं, लेकिन यह है प्रत्यर्थीगण के लिए यह दिखाना अनिवार्य है कि उनका कब्ज़ा वादी के स्वामित्व के प्रतिकूल हो गया है।“

18. इस संबंध में, प्रत्यर्थी संख्या 1 चंदर और श्रीमती गौरा के समय से मुकदमे की संपत्ति पर अपने रिश्ते, सांठगांठ या कब्जे की निरंतरता को सिद्ध नहीं कर सका। रिकॉर्ड से ऐसा प्रतीत होता है कि शुरू में जब 16.04.1965 को प्रत्यर्थी संख्या 1 द्वारा पहला लिखित बयान दायर किया गया था, तो प्रत्यर्थी संख्या 1 ने प्रतिकूल कब्जे की दलील नहीं दी थी, बल्कि अपने पूर्ववर्तियों के समय से मुकदमे की संपत्ति पर अपने स्वामित्व का दावा किया था। यहां तक कि मुद्दे संख्या 4 के खंडन में, प्रत्यर्थी संख्या 1 ने अपने स्वयं के विशेष स्वामित्व को सिद्ध करने के लिए खसरा निपटान (प्रदर्श ए 8), नक्शा निपटान (प्रदर्श ए 9) और एक गवाह डीडब्ल्यू 14 के दस्तावेज प्रस्तुत किए, लेकिन ये दस्तावेज कोई स्वामित्व प्रदान नहीं करते हैं। मुकदमे की संपत्ति और ट्रायल कोर्ट के साथ-साथ प्रथम अपीलीय अदालत ने प्रत्यर्थीगण के स्वामित्व को स्वीकार करने से इनकार कर दिया। टाइटल सूट की संपत्ति वादी के पास निहित पाई गई। सबसे पहले, वादी के पूर्ववर्ती गंगाबक्श के पक्ष में पारित निर्णय और डिक्री दिनांक 01.07.1908 के आधार पर और आगे उसके पिता द्वारा वादी के पक्ष में किए गए पंजीकृत उपहार विलेख दिनांक 29.01.1964 (प्रदर्श 1) के आधार पर।

19. जब प्रत्यर्थी संख्या 1 वादी के स्वामित्व के विपरीत मुकदमे की संपत्ति पर अपना मालिकाना हक दिखाने में बुरी तरह विफल रहा, तो ऐसा प्रतीत होता है कि लगभग 25 वर्षों की समाप्ति के बाद, प्रत्यर्थी संख्या 1 ने 26.07.1990 को आदेश 6 नियम 17 सीपीसी के तहत एक आवेदन दायर करके अपने लिखित बयान में प्रतिकूल कब्ज़ा विलेख प्राप्त करने के लिए बचाव को जोड़ने की मांग की। संशोधन के माध्यम से, प्रत्यर्थी संख्या 1 ने स्वर्गीय चंदर और श्रीमती गौरा के साथ अपनी सांठगांठ और संबंध दिखाने की कोशिश की। उसने गुहार लगायी कि उनके पिता लड्डूलाल को चंदर और श्रीमती गौरा ने गोद ले लिया था। 25 वर्षों के बाद लिखित बयान में जोड़ी गई गोद लेने की ऐसी दलील बिना किसी विवरण के है, यहां तक कि गोद लेने की कोई विशिष्ट तारीख भी नहीं है और न ही गोद लेने के समारोह का कोई साक्ष्य है। दोनों न्यायालयों ने देखा है कि प्रत्यर्थी संख्या 1 के पिता लड्डूलाल द्वारा चंदर और श्रीमती गौरा को गोद लेने को सिद्ध करने के लिए रिकॉर्ड पर कोई साक्ष्य नहीं है। गोद लेने के साक्ष्य के अभाव में, प्रत्यर्थी संख्या 1 चंदर और श्रीमती गौरा के कब्जे की निरंतरता में मुकदमे की संपत्ति पर अपना कब्जा दिखाने में विफल रहा है और यह भी कि वह उनका पोता है। वाद संपत्ति पर प्रत्यर्थी

संख्या 1 के कब्जे को स्वतंत्र माना गया है और वह सुश्री गौरा की मृत्यु के बाद कब्जे में आया। यह रिकार्ड में आ गया है, यद्यपि विशेष रूप से नहीं, कि श्रीमती गौरा की वर्ष 1956 में मृत्यु हो गई। इसके बाद, प्रत्यर्थी संख्या 1 ने मुकदमे की संपत्ति पर कब्जा कर लिया। तदनुसार, 1956 से मुकदमे की संपत्ति पर प्रत्यर्थी संख्या 1 का कब्ज़ा, 09.12.1964 को वर्तमान मुकदमे की स्थापना के समय 12 वर्ष पूरे नहीं करता है और इसलिए, मुकदमे का विलेख प्राप्त करने के लिए प्रत्यर्थी संख्या 1 की दलील प्रतिकूल कब्जे द्वारा संपत्ति को दोनों न्यायालयों द्वारा उचित रूप से स्वीकार नहीं किया गया है।

20. अपीलार्थीगण के अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि वादी के पिता प्रभु नारायण प्रत्यर्थी संख्या 2 ने श्रीमती गौरा के विरुद्ध बेदखली के लिए एक नागरिक मुकदमा दायर किया जिसे विलेख के आधार पर कब्जे के लिए मुकदमा दायर करने की स्वतंत्रता के साथ (प्रदर्श ए 10) अपास्त कर दिया गया था, लेकिन कब्जे के लिए कोई मुकदमा दायर नहीं किया गया था। विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि वादी यह सिद्ध नहीं कर सका कि चंदर ने गंगाबक्श के पक्ष में किराया नोट निष्पादित किया और श्रीमती गौरा ने प्रभु नारायण के पक्ष में कोई किरायानामा लिखा। 1951 से पहले मुकदमे की संपत्ति पर श्रीमती गौरा का कब्जा था। इसलिए, 09.12.1964 को मुकदमा दायर किया गया है और यह कब्जे के लिए समय-सीमा से वर्जित हो गया है। ऐसे तर्क हैं श्रीमती गौरा के उत्तराधिकारी के रूप में किसी सांठगांठ या उसके संबंध को दर्शाने के अभाव में अपीलार्थीगण को कोई मदद या लाभ नहीं मिलेगा। वाद संपत्ति पर प्रत्यर्थी संख्या 1 का कब्ज़ा स्वतंत्र और अलग है। प्रत्यर्थी संख्या 1 को श्रीमती गौरा और चंदर के साथ स्वयं को जोड़कर, अपने कब्जे की निरंतरता का दावा करने के लिए लाभ उठाने की अनुमति नहीं दी जा सकती है और वह भी एक बेतुकी दलील के आधार पर कि श्रीमती गौरा और चंदर ने उसके पिता लड्डुलाल को गोद लिया था। इससे भी अधिक जब गोद लेने के सिद्धांत को 25 वर्षों के बाद संशोधन के माध्यम से लिखित बयान में जोड़ा गया था और न तो गोद लेने का कोई विवरण है और न ही रिकॉर्ड पर कोई साक्ष्य है। नीचे दी गई दोनों न्यायालयों ने इस पहलू पर प्रत्यर्थी संख्या 1 के प्रतिकूल कब्जे की याचिका को स्वीकार करने से इनकार कर दिया है और प्रत्यर्थी के विरुद्ध मुद्दा संख्या 7 क और 7 ख का निर्णय किया है।

21. रिकॉर्ड पर इस तरह के तथ्यात्मक मैट्रिक्स से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि प्रत्यर्थी संख्या 1 द्वारा प्रतिकूल कब्जे के माध्यम से स्वामित्व प्राप्त करने का दावा करने की

दलील को दोनों न्यायालयों द्वारा उचित रूप से अस्वीकार कर दिया गया है। मुद्दे संख्या 4, 7ए और 7बी के निष्कर्ष समवर्ती हैं और नीचे दिए गए दोनों न्यायालयों द्वारा साक्ष्य की सराहना पर आधारित हैं। न तो ऐसे तथ्य निष्कर्षों में कोई विकृति है और न ही कुछ साक्ष्यों को गलत तरीके से पढ़ने/न पढ़ने पर आधारित हैं। इसलिए, जब प्रत्यर्थी संख्या 1 वादी के प्रतिकूल कब्जे की अपनी दलील को सिद्ध करने में बुरी तरह विफल रहा, तो नीचे दिए गए दो न्यायालयों ने उसके स्वामित्व के आधार पर वादी के पक्ष में कब्जे के लिए डिक्री पारित करने में कोई अवैधता नहीं की है। तदनुसार, कानून संख्या 1 और 5 के दोनों महत्वपूर्ण प्रश्नों का उत्तर नकारात्मक और अपीलार्थी के विरुद्ध दिया जाता है।

22. विधि संख्या II, III और IV के महत्वपूर्ण प्रश्न:-

(II) क्या प्रथम अपीलीय अदालत के 3 अक्टूबर 1996 के आक्षेपित आदेश को चुनौती देना अपीलार्थी के लिए खुला है, विशेषकर जब संपत्ति के स्वामित्व के संबंध में प्रश्न प्रदर्श ए-2 के माध्यम से उक्त वादी (अनजाने में प्रत्यर्थी के रूप में संदर्भित) के पक्ष में विधिवत निष्पादित उपहार विलेख के आधार पर वादी-प्रत्यर्थी (अनजाने में प्रत्यर्थी-प्रत्यर्थी के रूप में संदर्भित) द्वारा प्राप्त किया गया हो , हालांकि ट्रायल कोर्ट ने 30 जुलाई 1994 के अपने आदेश में इस पर कोई कार्रवाई नहीं की है। प्रथम अपीलीय अदालत द्वारा अपने आक्षेपित आदेश को चुनौती दी गई है?

(III) क्या उपहार विलेख के प्रश्न पर ट्रायल कोर्ट द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्ष, जिसके आधार पर वादी-प्रत्यर्थी (अनजाने में प्रत्यर्थी-प्रत्यर्थी के रूप में संदर्भित) मुकदमे की संपत्ति पर स्वामित्व का दावा कर रहा है, को विकृत और बिना कहा जा सकता है इसके समर्थन में कोई साक्ष्य, खासकर तब जब प्रथम अपीलीय अदालत ने चुनौती के तहत अपने आक्षेपित आदेश आदेश में उक्त प्रश्न पर बिल्कुल भी विचार नहीं किया है?

(IV) क्या यह कहा जा सकता है कि प्रत्यर्थी-अपीलार्थी (अनजाने में वादी-अपीलार्थी के रूप में संदर्भित) ने वादी-प्रत्यर्थी ओ (अनजाने में

प्रत्यर्थी-प्रत्यर्थी के रूप में संदर्भित) के विरुद्ध प्रतिकूल कब्जे की दलील पर मुकदमे की संपत्ति पर अपना अधिकार प्राप्त कर लिया है, जिसने अपना अधिकार स्थापित किया है उक्त संपत्ति पर अधिकार, शीर्षक और ब्याज गुण प्रदर्शन ए-2 द्वारा दिया गया है जो उपहार विलेख है?

23. विधि संख्या II, III और IV के महत्वपूर्ण प्रश्न वादी के पक्ष में निष्पादित और पंजीकृत वाद संपत्ति के उपहार विलेख और प्रत्यर्थी संख्या 1 पर इसके प्रभाव के संबंध में निष्कर्षों से संबंधित हैं। इसलिए इन पर संयुक्त रूप से विचार किया जा रहा है।

24. यह देखा जा सकता है कि वादी ने वाद में अनुरोध किया है कि उसके पिता प्रभु नारायण ने ई.एफ.जी.एच. के रूप में चिह्नित संपत्ति उपहार में दी थी। उपहार विलेख दिनांक 29.01.1964 के माध्यम से *बाहरी चौक, ताज और गोखा* के साथ 04.02.1964 को पंजीकृत किया गया। यहां ऊपर चर्चा हो चुकी है कि वादी के दादा अर्थात पिता प्रत्यर्थी संख्या 2 अर्थात् गंगाबक्श निर्णय एवं डिक्री दिनांक 01.07.1908 के आधार परए.बी.सी.डी. के रूप में चिह्नित पूरी हवेली का मालिक था। वादी के पिता द्वारा निष्पादित उपहार विलेख को प्रदर्श 1 के रूप में प्रस्तुत किया गया है। प्रत्यर्थी संख्या 1 ने न तो उपहार विलेख के निष्पादन पर प्रश्न उठाया है और न ही उसे चुनौती दी है। वादी ने अपने साक्ष्यों तथा अपने गवाहों के साक्ष्यों से उपहार विलेख का निष्पादन अपने पक्ष में सिद्ध कर दिया है। ट्रायल कोर्ट ने अपने निर्णय दिनांक 30.07.1994 में, वाद संख्या 1 का निर्णय करते हुए स्पष्ट रूप से वादी के पक्ष में उपहार विलेख के संबंध में निष्कर्ष दर्ज किया है। ट्रायल कोर्ट के दिनांक 30.07.1994 के निर्णय का प्रासंगिक भाग इस प्रकार है:-

"जहाँ तक बक्शीशनामा एबिज़. 1 का प्रश्न है वह प्रभु नारायण द्वारा अपनी पुत्री वादिनी के हक में किया जाना साक्ष्य से बखूबी प्रमाणित है और उसे प्रतिवादी की और से साक्ष्य में या अन्यथा गंभीर रूप से आक्षेपित भी नहीं किया गया है। अत: अलावा बक्शीशनामा शेष तनकी वादिनी क विरुद्ध निर्णित की जाती है।"

25. इस तरह के निष्कर्ष ट्रायल कोर्ट ने 30.07.1994 को अपने निर्णय में पारित किए लेकिन इन्हें प्रथम अपील में प्रत्यर्थी क्रमांक 1 द्वारा चुनौती नहीं दी गई है। उपहार विलेख

पर निष्कर्षों को किसी भी चुनौती के अभाव में या प्रत्यर्थी संख्या 1 द्वारा उपहार विलेख पर प्रश्न उठाने के अभाव में, पहली अपील में उपहार विलेख के संबंध में कोई निष्कर्ष देने का कोई अवसर नहीं था। फिर भी प्रथम अपीलीय अदालत ने देखा कि यह रिकॉर्ड पर सिद्ध हो गया है कि वादी मुकदमे की संपत्ति का मालिक बन गया और ट्रायल कोर्ट के निष्कर्षों से सहमत है। इस प्रकार, यह नहीं कहा जा सकता है कि प्रथम अपीलीय अदालत ने वादी के उपहार विलेख पर विचार नहीं किया।

यह देखा जा सकता है कि यहां अपीलार्थी-प्रत्यर्थी संख्या 1 प्रतिकूल कब्जे के माध्यम से मुकदमे की संपत्ति पर स्वामित्व का दावा कर रहा है, इसलिए, वादी को उसके पिता द्वारा पंजीकृत उपहार विलेख के माध्यम से वाद संपत्ति के उपहार विलेख के निष्पादन का तथ्य बिल्कुल भी प्रश्न में नहीं है। वास्तव में प्रत्यर्थी संख्या 1 को अपने स्वयं के और स्वतंत्र साक्ष्य जोड़कर प्रतिकूल कब्जे के माध्यम से मुकदमे की संपत्ति का शीर्षक प्राप्त करने की अपनी दलील को सिद्ध करना था, लेकिन वह इसे सिद्ध करने में बुरी तरह विफल रहा।

26. अपीलार्थीगण-प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता ने अपने तर्क में वादी के पक्ष में उपहार विलेख के निष्पादन के बारे में कोई संदेह नहीं उठाया है, लेकिन दृढ़ता से तर्क दिया है कि निचली अदालत ने स्वयं विरोधाभासी निष्कर्ष पारित किया है जैसे कि प्रत्यर्थी संख्या 1 को चंदर के पोते के रूप में नहीं माना गया था और श्रीमती गौरा, चंदर के विरुद्ध और गंगाबक्श के पक्ष में पारित दिनांक 01.07.1908 के निर्णय और डिक्री को इस निर्णय के आधार पर वादी के पूर्ववर्ती गंगाबक्श को मालिक मानने के लिए प्रत्यर्थी संख्या 1 पर बाध्यकारी नहीं ठहराया जा सकता था। अपने तर्कों के समर्थन में, अपीलार्थीगण के अधिवक्ता ने यह तर्क देने के लिए साक्ष्य अधिनियम की धारा 40, 41 और 42 का सहारा लिया है कि चूंकि प्रत्यर्थी संख्या 1 या उसके पूर्ववर्ती निर्णय और डिक्री दिनांक 01.07.1908 में पक्षकार नहीं थे, इसलिए प्रत्यर्थी संख्या 1 पर न्यायिक निर्णय का कोई प्रभाव नहीं है। उन्होंने **बिहार राज्य बनाम श्री राधा कृष्ण सिंह** [**एआईआर** 1983 **एससी** 684, **गोपालकृष्ण गुप्तन बनाम अम्मलु अम्माल** [**एआईआर** 1972 **केरल** 196] **और महाराजा सर केशो प्रसाद सिंह बहादुर बनाम बहुरिया माउंट भगजोगना कुएर** [**एआईआर** 1937 **प्रिवी काउंसिल** 69] के मामले में पारित निर्णय पर भी भरोसा किया गया है।

27. माननीय उच्चतम न्यायालय, केरल उच्च न्यायालय और प्रिवी काउंसिल के उपरोक्त

निर्णयों में साक्ष्य अधिनियम की धारा 40, 41, 42 और 43 के संदर्भ में निर्धारित कानून का प्रस्ताव विवाद में नहीं हैं। माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **बिहार राज्य बनाम राधा कृष्ण सिंह** (सुप्रा.) पैरा 122 और 133 में माननीय उच्चतम न्यायालय ने निम्नानुसार टिप्पणी की है:-

> "122. यह भी अच्छी तरह से स्थापित है कि प्रोबेट, दिवालियापन, वैवाहिक या संरक्षकता या अन्य समान कार्यवाही में पारित निर्णयों की तरह एक निर्णय, सभी मामलों में स्वीकार्य है, चाहे ऐसे निर्णय अंतरपक्षीय हों या नहीं। हालांकि, मौजूदा मामले में, दायर किए गए निर्णयों से युक्त सभी दस्तावेज व्यक्तिगत रूप से निर्णय नहीं हैं और इसलिए, उस आधार पर उनकी स्वीकार्यता का प्रश्न ही नहीं उठता है। जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, तत्काल मामले में प्रदर्शन के रूप में दायर किए गए निर्णय, व्यक्तिगत रूप से निर्णय हैं और इसलिए, वे साक्ष्य अधिनियम की धारा 41 में उल्लिखित शर्तों को पूरा नहीं करते हैं।
>
> 133. इस बिंदु पर ऊपर उद्धृत निर्णयों का संचयी प्रभाव स्पष्ट रूप से यह है कि साक्ष्य अधिनियम के तहत एक निर्णय जो अंतरपक्षीय नहीं है, वह साक्ष्य में अस्वीकार्य है, सिवाय यह सिद्ध करने के सीमित उद्देश्य के कि पक्ष कौन थे और क्या डिक्री पारित की गई थी और वे संपत्तियां क्या थीं, जो मुकदमे का विषय थीं। इसलिए, इन परिस्थितियों में, वादी-प्रत्यर्थीगण के लिए यह खुला नहीं है कि वे अपने स्वामित्व और रिश्ते का समर्थन करने के लिए दायर किए गए कुछ निर्णयों से कोई समर्थन प्राप्त करें, जिसमें न तो वादी और न ही प्रत्यर्थी पक्षकार थे। वास्तव में, यदि निर्णयों का उपयोग ऊपर उल्लिखित सीमित उद्देश्य के लिए किया जाता है, तो वे हमें वादी के मामले को सिद्ध करने के लिए कहीं नहीं ले जाते हैं।"

28. कानून का प्रस्ताव कहीं भी विवाद में नहीं है और कानून के ऐसे प्रस्ताव पर कोई असहमति या असहमति नहीं हो सकती है। मुद्दा यह है कि क्या अपीलार्थी वर्तमान मामले में कानून के ऐसे प्रस्ताव का सहारा लेने के पात्र हैं। निर्णय दिनांक 01.07.1908, निश्चित

रूप से विधि में निर्णय नहीं है, बल्कि यह व्यक्तिगत रूप से निर्णय है और इसके अलावा यह सार्वजनिक प्रकृति के मामले से संबंधित नहीं है, बल्कि यह निजी व्यक्तियों के बीच निजी संपत्ति के विवाद के संबंध में है। इस प्रकार, स्पष्ट रूप से निर्णय साक्ष्य अधिनियम की धारा 41 और 42 के दायरे से बाहर है, हालाँकि, यह साक्ष्य अधिनियम की धारा 40 या कम से कम धारा 43 के अंतर्गत आता है और अपीलार्थीगण-प्रत्यर्थीगण के विरुद्ध स्वीकार्य है। यह निर्विवाद है कि वादी के पूर्ववर्ती गंगाबक्श और एक श्री चंदर.के बीच मुकदमेबाजी में दिनांक 01.07.1908 का निर्णय पारित किया गया था। यह भी विवादित नहीं है कि निर्णय विचाराधीन संपत्ति के संबंध में है, जिसमें मुकदमे की संपत्ति भी शामिल है और एक घोषणात्मक डिक्री पारित करके गंगाबक्श को विलेख प्रदान किया गया था। इसमें कोई विवाद नहीं है कि दिनांक 01.07.1908 का निर्णय गंगाबक्श के पक्ष में, जो वादी के दादा हैं, और चंदर नामक व्यक्ति के विरुद्ध पारित किया गया था। यह स्वयं प्रत्यर्थी संख्या 1 का मामला है कि वह चंदर और श्रीमती गौरा का उत्तराधिकारी और पोता है और प्रत्यर्थी संख्या 1 के पिता लड्डुलाल ने चंदर और श्रीमती गौरा को गोद ले लिया। प्रत्यर्थी संख्या 1, विशेष रूप से मुकदमे की संपत्ति पर अपना विलेख और कब्ज़ा प्राप्त करने के लिए लिखित बयान में संशोधन की मांग करने के बाद, खुद को श्री चंदर और श्रीमती गौरा की पीढ़ी में जोड़ता है। प्रत्यर्थी संख्या 1 अनुमोदन और पुनर्मूल्यांकन की अनुमति नहीं दे सकता क्योंकि एक बार जब वह खुद चंदर के माध्यम से मुकदमे की संपत्ति पर अपने अधिकार और कब्जे का दावा करता है और खुद को उसका वंशज और पोता होने का आरोप लगाता है, तो उसके लिए यह तर्क देना स्वीकार्य नहीं है कि निर्णय दिनांक 01.07.1908 चंदर के विरुद्ध पारित आदेश को उस पर लागू और बाध्यकारी नहीं ठहराया जा सकता। प्रत्यर्थी संख्या 1 को इस संदर्भ में उसकी स्वयं की स्वीकारोक्ति से रोक दिया गया है। यह अलग बात है कि साक्ष्य में प्रत्यर्थी क्रमांक 1 अपने पिता लडडूलाल को श्री चंदर और श्रीमती गौरा द्वारा गोद लेने का तथ्य सिद्ध नहीं कर सका। इसलिए, निरंतरता में और श्री चंदर और श्रीमती गौरा.के वंशज होने के नाते, अपने प्रतिकूल कब्जे के दावे को सिद्ध करने में विफल रहा। समान तर्क और समान निर्णय माननीय उच्चतम न्यायालय, केरल उच्च न्यायालय और प्रिवी काउंसिल को निचली अदालतों के समक्ष भी अपीलार्थी-प्रत्यर्थी संख्या 1 के अधिवक्ता द्वारा संदर्भित किया गया था। नीचे दी गई दोनों न्यायालयों ने उनके तर्क को स्वीकार नहीं किया है और सही ढंग से देखा है कि प्रत्यर्थी

संख्या 1 के चंदर के माध्यम से मुकदमे की संपत्ति पर अपने अधिकार का दावा करने की स्वीकृति के मद्देनजर, वह चंदर के विरुद्ध और गंगाबक्श के पक्ष में पारित दिनांक 01.07.1908 के निर्णय से बंधा हुआ है। इसके अलावा प्रत्यर्थी संख्या 1 ने हालांकि दस्तावेज प्रदर्श ए8 और ए9 (खसरा बंदोबस्त और नक्शा) प्रस्तुत करके मुकदमे की संपत्ति पर अपना स्वामित्व स्थापित करने की कोशिश की, लेकिन इन दस्तावेजों के माध्यम से वह अपना स्वामित्व स्थापित नहीं कर सका और मुद्दा संख्या 4 का निर्णय वादी के पक्ष में हुआ। इसके बाद, प्रत्यर्थी संख्या 1 ने अपनी पिछली दूसरी अपील के चरण में 25 वर्ष बाद प्रतिकूल कब्जे की दलील लेते हुए लिखित बयान में संशोधन की मांग की है। इसका मतलब यह है कि, प्रत्यर्थी संख्या 1 मुकदमे की संपत्ति पर वादी के विलेख पर विवाद नहीं करता है, बल्कि वादी के लिए मुकदमे की संपत्ति पर 12 वर्ष से अधिक समय तक प्रतिकूल कब्जा रखने के माध्यम से अपना विलेख प्राप्त करने का दावा करता है। इस प्रकार, एक बार प्रत्यर्थी ने प्रतिकूल कब्जे की दलील दे दी है, तो वह मुकदमे की संपत्ति पर वादी के स्वामित्व को खतरे में डालने के लिए इसके विपरीत बहस नहीं कर सकता है। इसके अलावा, जब वादी के विलेख को वादी के पूर्ववर्ती गंगाबक्श के पक्ष में पारित निर्णय दिनांक 01.07.1908 के साथ समर्थन मिलता है। इस प्रकार, अपीलार्थीगण के अधिवक्ता द्वारा धारा 40 से 43 का बहाना लेकर यहां ऊपर उल्लिखित निर्णयों के समर्थन में दी गई दलीलों का कोई परिणाम नहीं है और अपीलार्थीगण के किसी भी लाभ के लिए उपयुक्त नहीं है। यह भी देखा जा सकता है कि नीचे के न्यायालयों ने भी इस तथ्य पर भरोसा किया है कि के एक अन्य भाग में संपत्ति (सामने चौक सहित हवेली), वादी के पिता प्रभु नारायण ने छुट्टन लाल नाम के एक अन्य व्यक्ति के विरुद्ध मुकदमा दायर किया था, जिसका निर्णय दिनांक 31.01.1961 (प्रदर्श ए3) के तहत उनके पक्ष में हुआ था। इस निर्णय में भी वादी के पिता को संपत्ति का मालिक माना गया।

29. इसलिए, निचली अदालतों द्वारा पारित निर्णय और डिक्री अचूक हैं और अपीलार्थी-प्रत्यर्थी प्रतिकूल कब्जे के माध्यम से स्वामित्व प्राप्त करने की अपनी दलील सिद्ध करने पर ही इस दूसरी अपील में सफल हो सकते हैं। जैसा कि पिछले पैराग्राफों में चर्चा की गई है कि प्रत्यर्थी संख्या 1 का कब्ज़ा एक स्वतंत्र और अलग कब्ज़ा है और उसने 1956 में श्रीमती गौरा की मृत्यु के बाद मुकदमे की संपत्ति पर कब्ज़ा कर लिया। इसलिए, वाद संपत्ति पर प्रतिकूल कब्जे के लिए उनका दावा पूर्ण नहीं हो जाता क्योंकि कब्जे के लिए

मुकदमा प्रत्यर्थी संख्या 1 के कब्जे की तारीख से 12 वर्ष की अवधि पूरी होने से पहले 09.12.1964 को स्थापित किया गया था। चर्चा का परिणाम यह है कि विधि संख्या 2, 3 और 4 के महत्वपूर्ण प्रश्नों का उत्तर नकारात्मक और अपीलार्थीगण के विरुद्ध दिया जा सकता है और तदनुसार उत्तर दिया जाता है।

30. अपीलार्थीगण के अधिवक्ता ने अपनी मौखिक दलीलें देने के अलावा लिखित दलीलें भी जमा की हैं। यहां ऊपर चर्चा के अलावा कोई अन्य तर्क नहीं उठाया गया है और यहां ऊपर चर्चा के अलावा कानून का कोई अन्य महत्वपूर्ण प्रश्न उठाया या प्रस्तावित नहीं किया गया है।

31. **उमरखान बनाम बिस्मिल्लाबी शेख और अन्य** [(2011) 9 **एससीसी** 684] के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने देखा है कि यदि कानून के महत्वपूर्ण प्रश्नों पर दूसरी अपील स्वीकार की जाती है, तो दूसरी अपील की अंतिम सुनवाई करते समय, न्यायालय कानून के महत्वपूर्ण प्रश्नों को फिर से तैयार कर सकती है या नए महत्वपूर्ण प्रश्नों को तैयार कर सकती है। कानून का या यहां तक कि यह भी माना जा सकता है कि पहले से तैयार किए गए कानून का प्रश्न कानून के महत्वपूर्ण प्रश्न के दायरे में नहीं आता है, लेकिन उच्च न्यायालय कानून के महत्वपूर्ण प्रश्न के गठन/शामिल हुए बिना धारा 100 सीपीसी के तहत अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग नहीं कर सकता है।

32. माननीय उच्चतम न्यायालय ने अनगिनत मामलों में सीपीसी की धारा 100 के तहत ट्रायल कोर्ट और प्रथम अपीलीय अदालत के समवर्ती निष्कर्षों में हस्तक्षेप के लिए उच्च न्यायालय के दायरे पर चर्चा की है।

33. उच्चतम न्यायालय ने हाल ही में **तुलसीधारा बनाम नारायणप्पा** [(2019) 6 **एससीसी** 409] के मामले ने निम्नानुसार टिप्पणी की है:-

> "1976 के संशोधन के बाद धारा 100 सीपीसी के तहत दूसरी अपील पर विचार करने संबंधी उच्च न्यायालय का अधिकार क्षेत्र केवल कानून के महत्वपूर्ण प्रश्न से जुड़ी दूसरी अपील तक ही सीमित है। धारा 100 सीपीसी के तहत क्षेत्राधिकार के प्रयोग के लिए "कानून का एक महत्वपूर्ण प्रश्न" का अस्तित्व एक अनिवार्य शर्त है। इस मामले में उच्च न्यायालय द्वारा तय किया गया प्रश्न बिल्कुल भी विधिक प्रश्न नहीं

कहा जा सकता है।

वर्तमान मामले में ट्रायल कोर्ट के साथ-साथ प्रथम अपीलीय अदालत ने, विभाजन विलेख और बिक्री कार्यों सहित रिकॉर्ड पर साक्ष्यों की सराहना पर ठोस कारण दिए और उसके बाद माना कि वादी यह घोषणा करने का पात्र नहीं है कि वह ज़मीन का मालिक बन गया है। निचली दोनों अदालतों द्वारा पारित निर्णय और डिक्री में हस्तक्षेप करते हुए, उच्च न्यायालय ने फिर से रिकॉर्ड पर पूरे साक्ष्य का अवलोकन किया है, जो धारा 100 सीपीसी के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए, स्वीकार्य नहीं है। इन परिस्थितियों में, उच्च न्यायालय ने निचली दोनों अदालतों द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्षों को रद्द करने और अपास्त करने में एक गंभीर/स्पष्ट त्रुटि की है, जो रिकॉर्ड पर साक्ष्य की समझ से संबंधित थे। सीपीसी की धारा 100 के तहत शक्तियों का प्रयोग करते समय उच्च न्यायालय ने अपने अधिकार क्षेत्र का उल्लंघन किया है। अन्यथा भी, गुणागुण के आधार पर, उच्च न्यायालय द्वारा अपील की अनुमति देने और परिणामस्वरूप मुकदमे पर निर्णय सुनाने वाला आक्षेपित निर्णय और आदेश टिकाऊ नहीं है।"

34. **गुरनाम सिंह बनाम लेहना सिंह [(2019) 7 एससीसी 641]** के एक अन्य निर्णय में यह कहा गया है:-

"वर्तमान निर्णय से अलग होने से पहले, हम उच्च न्यायालयों को याद दिलाते हैं कि सीपीसी की धारा 100 के तहत अपील में उच्च न्यायालय का अधिकार क्षेत्र, कानून के महत्वपूर्ण प्रश्न से जुड़े मामले तक ही सीमित है और धारा 100 सीपीसी के तहत दूसरी अपील पर निर्णय लेते समय, उच्च न्यायालय के लिए यह अनुमति नहीं है कि वह रिकॉर्ड पर साक्ष्य की फिर से सराहना करे और निचली अदालतों और/या प्रथम अपीलीय अदालत द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्षों में हस्तक्षेप करे और यदि प्रथम अपीलीय अदालत ने न्यायिक तरीके से अपने विवेक का प्रयोग किया है, तो उसका निर्णय बदला नहीं जा

सकता है। दूसरी अपील में हस्तक्षेप की आवश्यकता वाले कानून या प्रक्रिया की त्रुटि से पीड़ित के रूप में दर्ज किया जाएगा। हमने देखा है और यहां तक कि इस न्यायालय द्वारा बार-बार देखा गया है और यहां तक कि **नारायणन राजेंद्रन बनाम लक्ष्मी सरोजिनी**, (2009) 5 एससीसी 264 के मामले में भी, इस न्यायालय के निर्णयों और यहां तक कि धारा 100 सीपीसी के तहत जनादेश के बावजूद, धारा 100 सीपीसी के तहत उच्च न्यायालय तथ्यों के समवर्ती निष्कर्षों और/या यहां तक कि प्रथम अपीलीय अदालत द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्षों को प्रभावित कर रहे हैं, या तो कानून का पर्याप्त प्रश्न तैयार किए बिना या कानून का गलत सारगर्भित प्रश्न तैयार करने पर।"

35. माननीय उच्चतम न्यायालय ने **सी.डोड्डानारायण रेड्डी बनाम सी.जयराम रेड्डी** [(2020) 4 **एससीसी** 659], धारा 100 सीपीसी के तहत तथ्य की खोज में हस्तक्षेप करने के लिए उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र पर चर्चा करते हुए यह माना गया है कि हालांकि उच्च न्यायालय ट्रायल कोर्ट के रूप में कार्य करते हुए अलग दृष्टिकोण अपना सकता था लेकिन एक बार, निचली दो अदालतों ने निष्कर्ष निकाला है जो भौतिक दस्तावेजों की किसी भी गलत व्याख्या पर आधारित नहीं है, न ही कानून के किसी भी प्रावधान के विरुद्ध है और न ही यह कहा जा सकता है कि न्यायिक और उचित रूप से कार्य करने वाला कोई भी न्यायाधीश ऐसे निष्कर्षों तक पहुंच सकता है, फिर, यह नहीं कहा जा सकता है कि न्यायालय से गलती हुई है। पिछले निर्णय पर भरोसा करते हुए उच्चतम न्यायालय ने निम्नानुसार माना है:-

"हाल ही में राजस्थान राज्य बनाम शिव दयाल के रूप में प्रकाशित एक अन्य निर्णय में, यह माना गया कि तथ्य की समवर्ती खोज बाध्यकारी है, जब तक कि यह इंगित नहीं किया जाता है कि यह दलीलों से परे दर्ज किया गया था या यह बिना किसी साक्ष्य पर आधारित था या रिकॉर्ड और दस्तावेजों पर सामग्री की गलत व्याख्या पर आधारित था। न्यायालय ने निम्नानुसार निर्णय लिया:

“16. जब तथ्य की किसी भी समवर्ती खोज पर दूसरी अपील में कार्रवाई की जाती है, तो अपीलार्थी को यह इंगित करने का अधिकार

है कि यह कानून में खराब है क्योंकि इसे दलीलों से पहले दर्ज किया गया था या यह बिना किसी साक्ष्य पर आधारित था या यह भौतिक दस्तावेजी साक्ष्य की गलत व्याख्या पर आधारित था या यह कानून के किसी भी प्रावधान के विरुद्ध दर्ज किया गया था और अंत में, निर्णय वह है जिस पर न्यायिक रूप से कार्य करने वाला कोई भी न्यायाधीश तर्कसंगत रूप से नहीं पहुंच सका।" (राजेश्वर विश्वनाथ ममीदवार और अन्य बनाम दशरथ नारायण चिलवेलकर और अन्य, एआईआर 1943 नागपुर 117 पैरा 43 मामले में विद्वान न्यायाधीश विवियन बोस, जे. द्वारा की गई टिप्पणी देखें, जो उस समय नागपुर उच्च न्यायालय के न्यायाधीश थे।)"

36. चर्चा का निष्कर्ष यह है कि तत्काल दूसरी अपील सफल होने के लिए उत्तरदायी नहीं है और इसे अपास्त कर दिया जाना चाहिए और इस प्रकार अपास्त कर दिया गया है। खर्चों के संबंध में कोई आदेश नहीं है।

37. सभी लंबित आवेदन, यदि कोई हों, का भी निपटारा कर दिया जाएगा।

38. नीचे दिए गए दोनों न्यायालयों का रिकॉर्ड तुरंत वापस भेजा जाए।

(सुदेश बंसल), न्यायमूर्ति

टिप्पणी: इस निर्णय का हिन्दी अनुवाद निविदा फर्म राजभाषा सेवा संस्थान द्वारा किया गया है, जिसे फर्म के निदेशक डॉ. वी. के. अग्रवाल, द्वारा मान्य और सत्यापित किया गया है।

अस्वीकरण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन व कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।